प्रश्न — प्रगतिवाद की विशेषताओं को लिखें। (प्रवृत्तियाँ)

उत्तर — हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रगतिवाद एक महत्त्वपूर्ण साहित्यिक आन्दोलन है। सन् १९३६ ई. के आसपास वैचारिक और राजनीतिक क्षेत्र में जो नये दृष्टिकोण परिलक्षित हुए, उनमें समाजवादी और साम्यवादी दृष्टियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आर्थिक पक्ष और वर्ग-भेद का एक आवश्यक क्रान्ति से युक्त करके ये मत प्रकट होते हैं। अभी तक जनता के केन्द्र में किसान उपस्थित था, किन्तु उसके साथ मजदूरों की कतारों से जनता निकलकर खड़ा हो गया। प्रगतिवादी काव्य के उद्भव और विकास में राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ तो सहायक हुईं ही; साथ ही साथ छायावाद की जीवन शून्य होती हुई व्यक्तिवादी काव्य-धारा की प्रतिक्रिया भी शामिल हुई। सन् ३०-३५ के आसपास राष्ट्रीय स्वतंत्रता-संग्राम चरम बिन्दु पर पहुँच चुका था, यहाँ भी स्वतंत्रता की आशा-किरण दिखायी पड़ रही थी। इसी कारण राजनीतिक संघर्ष पर स्वतंत्रता के साथ समानता का स्वर तीव्र होने लगा। समाजवादी नारों का उदय हुआ। साहित्य प्रेरणा के रूप में प्रगतिवाद ने रूस की क्रान्ति को अपना आदर्श माना। सन् १९१७ ई. में रूसी क्रान्ति हो चुकी थी। वह मार्क्सवादी भौतिक दर्शन की प्रथम अंगड़ाई थी। भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग और अपनी सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक विसंगतियों को आक्रोश की दृष्टि से देख रहा था। रूस के साम्यवाद में उसके लिए बड़ा आकर्षण था। इसी कारण यहाँ प्रगतिवाद का उद्भव हुआ। इसमें काल्पनिक आदर्श की अपेक्षा यथार्थ वस्तु-जगत का आग्रह अधिक है।

सन् १९३४ में काँग्रेस में समाजवादी दल की स्थापना प्रगतिशील भावनाओं का ही प्रस्फुटन है।

सन् १९३५ ई. में प्रसिद्ध उपन्यासकार ई. एम. फार्स्टर की अध्यक्षता में 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसियेशन' की स्थापना हुई। सन् १९३६ ई. में उक्त संघ से प्रभावित होकर, मुल्कराज आनन्द और सज्जाद जहीर के उद्योग से 'भारतीय लेखक संघ' की स्थापना हुई। अध्यक्ष थे प्रेमचन्द जी। यह अधिवेशन लखनऊ में हुआ था। यहीं से प्रगतिवाद का आरम्भ माना जा सकता है।

Scanned with CamScanner

अंग्रेजों की नीति के कारण औद्योगीकरण भारत में पनपने नहीं पा रहा था। बहुत धीमी गति से औद्योगीकरण हो रहा था, जिससे दो वर्ग पैदा हो गए — एक शोषक वर्ग, दूसरा शोषित या सर्वहारा वर्ग। प्रगतिवादियों ने साम्राज्यवाद और पूँजीवाद दोनों के विरुद्ध नारा बुलन्द किया। श्रमिकों और कृषकों की स्थिति बड़ी ही नाजुक थी। द्वितीय विश्वयुद्ध की मँहगाई ने जनमानस में आक्रोश उत्पन्न किया।

साहित्य में प्रगति तत्व सदैव से रहे हैं। प्रगतिशील और प्रगतिवाद में एक महान अन्तर है। प्रगतिवाद साहित्य के क्षेत्र में राजनीतिक विचारधारा को लेकर आया। वह इसी के माध्यम से सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक जीवन में क्रान्ति लाना चाहता था किन्तु प्रगतिशील साहित्य को वाद की परिधि में नहीं बाँधा जा सकता। प्रगतिवादी जनता का कल्याण और द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी सिद्धान्त को मानते हैं।

प्रगतिवाद की प्रवृत्तियाँ — (1) सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति — छायावादी कविता कल्पना-उदधि में 'अनन्त' और 'अतीत' को खोजती रही। प्रगतिवाद में कविता कल्पना के गगन पर से यथार्थ की धरती पर आ गई। यथार्थवादी भावना के कारण ही गरीबों, दलितों, गन्दी बस्तियों और झोपड़ियों से प्रीति किया। प्रगतिवाद में यथार्थ का अत्यधिक आग्रह है। अतः इनमें कल्पना-जगत को छोड़कर यथार्थ वस्तु-जगत — लोकजीवन से सीधा नाता जोड़ा।

सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति की दृष्टि से केदारनाथ अग्रवाल अधिक जागरूक कवि हैं। नागार्जुन में यथार्थ का आग्रह ही नहीं, पक्ष भी है। उन्होंने युग की विसंगतियों एवं विषमताओं को पकड़ा है।

(2) राष्ट्रीय चेतना — हिन्दी की प्रगतिवादी कविता में राष्ट्रीय भावना, देशप्रेम, सामाजिक वैषम्य के विरुद्ध एवं विद्रोही पक्ष है। प्रगतिवादियों ने साम्राज्यवाद और विदेशी दासता का विरोध किया है। देश की स्वाधीनता के लिए संघर्षरत जनता को उत्प्रेरित किया है। बलिदान, संघर्ष और क्रान्ति के लिए जनता को प्रोत्साहित किया है।

Scanned with CamScanner

3) वर्ग-चेतना और सामाजिक वैषम्य — प्रगतिवादियों की आस्था है कि औद्योगिकीकरण के कारण समाज में दो वर्ग उत्पन्न हो गए — पूँजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग। पूँजीपति वर्ग शोषक होता है। वह सुविधा भोगी, आरामतलब एवं अमीर होता है। सर्वहारा वर्ग शोषित, परिश्रमी, ईमानदार, निर्धन, अधिकारहीन होता है। परिस्थिति की विषमता से वर्ग-संघर्ष का बीजारोपण होता है। शोषकों के पास धर्म, धन, बल, शिक्षा, बुद्धि एवं अभिजात्य का समर्थन होता है। विषमता की समाप्ति के लिए वर्ग-संघर्ष आवश्यक है।

दिनकर कहते हैं —

एक ओर समृद्धि थिरकती, पास सिसकती है कंगाली।
एक देह पर एक न चिथड़ा, एक स्वर्ण के गहनोंवाली।

4) पूँजीवाद, साम्राज्यवाद और सामन्तवाद का विरोध — हिन्दी का प्रगतिवादी काव्य केवल पूँजीपति और सर्वहारा वर्ग के संघर्ष पर आधारित नहीं है। उसने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पूँजीवाद, सामन्तवाद और साम्राज्यवाद का भी प्रबल विरोध किया है। द्वितीय विश्वयुद्ध में उभरे फासिज्म और नाजीवाद का भी उन्होंने विरोध किया।

(5) मानवतावादी दृष्टिकोण — प्रगतिवादी कविता प्रारम्भ से ही आधुनिक नये संसार, नये साथ मानवतावादी धारणा को लेकर चली है। समाज और नयी मानव-संस्कृति की रचना के मूल में भी यही मानवतावाद है। इस मानवतावाद में शोषक वर्ग का स्थान नहीं है। यह दलित-पीड़ित जनता का पोषक और पूँजीवाद का शत्रु है। इसका साध्य मानव-हित है। दिनकर की 'रेणुका' एवं 'हुंकार' तथा रांगेय राघव के 'पिघलते पत्थर' में यही मानवतावाद है।

(6) ईश्वर और धर्म के प्रति क्षोभ — प्रगतिवाद में धर्म, ईश्वर, आध्यात्मिकता, भक्ति, सनातन आदर्श, पाप-पुण्य का कोई स्थान नहीं है। मार्क्स ने कहा है — धर्म अफीम का टुकड़ा है, जो इसका सेवन करता है उसकी बुद्धि मारी जाती है। प्रगतिवादियों ने भारतीय लेखक संघ कि आज का मनुष्य देवताओं का गुलाम नहीं। वह अधिनायक है और न उनकी दया का पात्र है।

(7) भौतिकता एवं बौद्धिकता — नये-नये वैज्ञानिक का आरम्भ माना जा सकता आविष्कारों के फलस्वरूप जन-जीवन